सरल

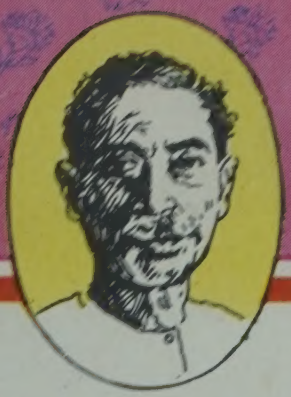

प्रेमचन्द

LIBRARY

सुजान भगत

R.B A.N.M'S Edncl. Institutions,
Bangalore-42
FOUNDER'S DAY STUDY PRIZE

LIBRARY

सुजान भगत

ACC. No. 8101
CLASS No. G-32(PRE)HIN
Date 19.6.07

प्रेमचंद

Anil Pustak Kendra
(Hindi Book Centre)
21, Avenue Road, BANGALORE - 2

समाज शिक्षा प्रकाशन

मूल्य : दस रुपये (10.00)
संस्करण : 1989 © प्रकाशक
समाज शिक्षा प्रकाशन, 2702, लोथियान रोड, दिल्ली द्वारा प्रकाशित

SUJAN BHAGAT (Short Stories) by Prem Chand

सुजान भगत

सीधे-सादे किसान, धन हाथ आते ही धर्म और कीर्ति की ओर झुकते हैं। दिव्य समाज की भाँति वे पहले अपने भोगविलास की ओर नहीं दौड़ते। सुजान की खेती में कई साल से कंचन बरस रहा था। मेहनत तो गाँव के सभी किसान करते थे, पर सुजान के चंद्रमा बली थे, ऊसर में भी दाना छींट आता तो कुछ न कुछ पैदा हो जाता था। तीन वर्ष लगातार ऊख लगती गई। इधर गुड़ का भाव तेज़ था, कोई दो-ढाई हज़ार हाथ में आ गए। बस, चित्त की वृत्ति धर्म की ओर झुक पड़ी। साधु-सन्तों का आदर-सत्कार होने लगा, द्वार पर धूनी जलने लगी। कानूनगो इलाके में आते, तो सुजान महतो के चौपाल में ठहरते। हल्के के हेड कांस्टेबिल, थानेदार, शिक्षाविभाग के अफसर, एक न एक उस चौपाल में पड़ा ही रहता। महतो मारे खुशी के फूले न सामते। धन्य भाग्य! उनके द्वार पर अब इतने बड़े-बड़े हाकिम आकर ठरहते हैं। जिन हाकिमों के सामने उसका मुँह न खुलता था, उन्हीं की अब 'महतो-महतो' कहते जबान सूखती थी। कभी-कभी भजन-भाव हो जाता। एक

महात्मा ने डौल अच्छा देखा, तो गाँव में आसन जमा दिया। गाँजे और चरस की बहार उड़ने लगी। एक ढोलक आयी, मँजीरे मँगवाए गए, सत्संग होने लगा। यह सब सुजान के दम का जलूस था। घर में सेरों दूध होता! मगर सुजान के कंठ-तले एक बूंद जाने की भी कसम थी। कभो हाकिम लोग चखते, कभो महात्मा लोग।

किसान को दूध-घी से क्या मतलब? उसे तो रोटी और साग चाहिए। सुजान की नम्रता का अब वारापार न था। सबके सामने सिर झुकाए रहता, कहीं लोग यह न कहने लगें कि धन पाकर इसे घमंड हो गया है। गाँव में कुल तीन ही कुएँ थे, बहुत-से खेतों में पानी न पहुँचता था, खेती मारी जाती थी, सुजान ने एक पक्का कुआँ बनवा दिया। कुएँ का विवाह हुआ, यज्ञ हुआ, ब्रह्मभोज हुआ। जिस दिन कुएँ पर पहली बार पुर चला, सुजान को चारों पदार्थ मिल गए। जो काम गाँव में किसी ने न किया था, वह बाप-दादा के पुण्य-प्रताप से सुजान ने कर दिखाया।

एक दिन गाँव में गया के यात्री आकर ठहरे! सुजान ही के द्वार पर उनका भोजन बना! सुजान के मन में भो गया करने की बहुत दिनों से इच्छा थी। यह अच्छा अवसर देखकर वह भी चलने को तैयार हो गया।

उसकी स्त्री बुलाकी ने कहा—अभी रहने दो, अगले साल चलेंगे।

सुजान ने गम्भीर भाव से कहा—अगले साल क्या होगा, कौन जानता है? धर्म के काम में मीन-मेष निकालना अच्छा नहीं। ज़िंदगानी का क्या भरोसा?

बुलाकी—हाथ खाली हो जाएगा।

सुजान—भगवान की इच्छा होगी, फिर रुपये हो

जाएँगे, उनके यहाँ किस बात की कमी है।

बुलाकी इसका क्या जवाब देती! सत्कार्य में बाधा डालकर अपनी मुक्ति क्यों बिगाड़तो! प्रातःकाल स्त्री और पुरुष गया करने चले। वहाँ से लौटे, तो यज्ञ और ब्रह्मभोज की ठहरी। सारी बिरादरी निमंत्रित हुई, ग्यारह गाँवों में सुपारी बँटी। इस धूम-धाम से कार्य हुआ कि चारों ओर वाह-वाह मच गई। सब यही कहते कि भगवान धन दे, तो दिल भी ऐसा ही दे, घमंड तो छू नहीं गया, अपने हाथ से पत्तल उठाता फिरता था, कुल का नाम जगा दिया। बेटा हो, तो ऐसा हो। बाप मरा तो घर में भूनी भांग नहीं थी। अब लक्ष्मी घुटने तोड़कर आ बैठी हैं!

एक द्वेषी ने कहा—कहीं गड़ा हुआ धन पा गया है। इस पर चारों ओर से उस पर बौछारें पड़ने लगीं—हाँ, तुम्हारे बाप-दादा जो खजाना छोड़ गए थे, वही हाथ लग गया है। अरे भैया, यह धर्म की कमाई है। तुम भी छाती फाड़कर काम करते हो, क्यों ऐसी ऊख नहीं लगती, क्यों ऐसी फसल नहीं होती? भगवान आदमी का दिल देखते हैं, जो खर्च करना जानता है, उसी को देते हैं।

2

सुजान महतो सुजान भगत हो गए। भगतों के आचार-विचार कुछ और ही होते हैं। यह बिना स्नान किए कुछ नहीं खाता। गंगाजी अगर घर से दूर हों और वह रोज स्नान करके दोपहर तक घर न लौट सकता हो, तो पर्वों के दिन तो उसे अवश्य ही नहाना चाहिए। भजन-भाव उसके घर अवश्य होना चाहिए। पूजा-अर्चा उसके लिए

अनिवार्य है। खान-पान में भी उसे बहुत विचार रखना पड़ता है। सबसे बड़ी बात यह है कि झूठ का त्याग करना पड़ता है। भगत झूठ नहीं बोल सकता। साधारण मनुष्य को अगर झूठ का दंड एक मिले, तो भगत को एक लाख से कम नहीं मिल सकता।

अज्ञान की अवस्था में कितने ही अपराध क्षम्य हो जाते हैं। ज्ञानी के लिए क्षमा नहीं है, प्रायश्चित्त नहीं है, या है तो बहुत ही कठिन। सुजान को भी अब भगतों की मर्यादा को निभाना पड़ा। अब तक उसका जीवन मजूर का जीवन था। उसका कोई आदर्श, कोई मर्यादा उसके सामने न थी। अब उसके जीवन में विचार का उदय हुआ, जहाँ का मार्ग काँटों से भरा हुआ है। स्वार्थ-सेवा ही पहले उसके जीवन का लक्ष्य थी, इसी काँटे से वह परिस्थितियों को तौलता था। वह अब उन्हें औचित्य के काँटों पर तौलने लगा। यों कहो कि जड़-जगत् से मिलकर उसने चेतन-जगत् में प्रवेश किया।

उसने कुछ लेन-देन करना शुरू किया था! पर अब उसे ब्याज लेते हुए आत्मग्लानि-सी होती थी। यहाँ तक कि गउओं को दुहाते समय बछड़ों का ध्यान बना रहता था—कहीं बछड़ा भूखा न रह जाए, नहीं उसका रोआँ दुःखी होगा! वह गाँव का मुखिया था, कितने ही मुकदमों में झूठी शहादतें बनवायी थीं, कितनों से डाँड़ लेकर मामला रफा-दफा करा दिया था। अब इन व्यापारों से घृणा होती थी। झूठ और प्रपंच से कोसों भागता था।

पहले उसकी यह चेष्टा होती थी कि मजूरों से जितना काम लिया जा सके लो और मजूरी जितनी कम दी जा सके दो, पर अब उसे मजूरों के काम की कम, मजूरी की अधिक

चिंता रहती थी—कहीं बेचारे मजूर का रोआँ न दुःखी हो जाए। यह उसका सखुनतकिया-सा हो गया—किसी का रोआँ न दुःखी हो जाए। उसके दोनों जवान बेटे बात-बात में उस पर फब्तियाँ कसते, यहाँ तक कि बुलाकी भी अब उसे कोरा भगत समझने लगी, जिसे घर के भले-बुरे से कोई प्रयोजन न था। चेतन-जगत् में आकर सुजान भगत कोरे भगत रह गए।

सुजान के हाथों से धीरे-धीरे अधिकार छीने जाने लगे। किस खेत में क्या बोना है, किसको क्या देना है, किससे क्या लेना है, किस भाव क्या चीज़ बिकी, ऐसी महत्वपूर्ण बातों में भी भगतजी की सलाह न ली जाती। भगत के पास कोई जाने ही न पाता। दोनों लड़के या स्वयं बुलाकी दूर ही से मामला कर लिया करती। गाँव भर में सुजान का मान-सम्मान बढ़ता था, अपने घर में घटता था। लड़के उसका सत्कार अब बहुत करते। उसे हाथ से चारपाई उठाते देख लपकर खुद उठा लाते, उसे चिलम न भरने देते, यहाँ तक उसकी धोती छाँटने के लिए भी आग्रह करते थे! मगर अधिकार उसके हाथ में न था। वह अब घर का स्वामी नहीं, मंदिर का देवता था।

3

एक दिन बुलाकी ओखली में दाल छाँट रही थी। एक भिखमंगा द्वार पर आकर चिल्लाने लगा। बुलाकी ने सोचा, दाल छाँट लूँ, तो उसे कुछ दे दूँ। इतने में बड़ा लड़का भोला आकर बोला—अम्माँ, एक महात्मा द्वार पर खड़े गला फाड़ रहे हैं। कुछ दे दो, नहीं उनका रोआँ दुःखी

हो जाएगा।

बुलाकी ने उपेक्षा-भावसे कहा—भगत के पांव में क्या मेंहदी लगी है, क्यों कुछ ले जाकर नहीं देते ! क्या मेरे चार हाथ हैं ? किस-किसका रोआँ सुखी करूँ, दिन-भर तो ताँता लगा रहता है !

भोला—चौपट करने पर लगे हुए हैं और क्या ? अभी महँगू बेंग देने आया था। हिसाब से सात मन हुए। तौला तो पौने सात मन ही निकले। मैंने कहा—दस सेर और ला, तो आप बैठे-बैठे कहते हैं, अब इतनी दूर कहाँ लेने जाएगा ? भर-पाई लिख दो, नहीं उसका रोआँ दुःखी होगा। मैंने भर-पाई नहीं लिखी। दस सेर बाकी लिख दी।

बुलाकी—बहुत अच्छा किया तुमने, बकने दिया करो, दस-पांच दफे मुंह की खाएँगे, तो आप ही बोलना छोड़ देंगे।

भोला—दिन-भर एक-न-एक खुचड़ निकालते रहते हैं। सौ दफे कह दिया कि तुम घर-गृहस्थी के मामले में न बोला करो ! पर इनसे बिना बोले रहा ही नहीं जाता।

बुलाकी—मैं जानती कि इनका यह हाल होगा, तो गुरु-मंत्र न लेने देती।

भोला—भगत क्या हुए कि दीन-दुनिया—दोनों से गए। सारा दिन पूजा-पाठ में ही उड़ जाता है। अभी ऐसे बूढ़े नहीं हो गए कि कोई काम ही न कर सकें।

बुलाकी ने आपत्ति की—भोला, यह तो तुम्हारा कुन्याय है। फावड़ा-कुदाल अब उनसे नहीं हो सकता, लेकिन कुछ-न-कुछ तो करते रहते हैं। बैलों को सानी-पानी देते हैं, गाय दुहाते हैं, और भी जो-कुछ हो सकता है, करते हैं।

भिक्षुक अभी तक खड़ा चिल्ला रहा था। सुजान ने

जब घर में से किसी को कुछ लाते न देखा, तो उठकर अन्दर गया और कठोर स्वर से बोला—तुम लोगों को कुछ सुनाई नहीं देता कि द्वार पर पौन घंटे-भर से खड़ा भीख माँग रहा है ? अपना काम तो दिन-भर करना ही है, एक छन भगवान् का काम भी तो किया करो ।

बुलाकी—तुम तो भगवान का काम करने को बैठे ही हो । क्या घर-भर भगवान् ही का काम करेगा ?

सुजान—कहाँ आटा रखा है, लाओ मैं ही निकालकर दे आऊँ । तुम रानी बनकर बैठो ।

बुलाकी—आटा मैंने मर-मरकर पीसा है, अनाज दे दो। ऐसे मुड़चिरों के लिए पहर-रात से उठकर चक्की नहीं चलाती हूँ ।

सुजान भंडार-घर में गये और एक छोटी-सी छबड़ी को जौ से भरे हुए निकले । जौ सेर-भर से कम न था । सुजान ने जान-बूझकर, केवल बुलाकी और भोला को चिढ़ाने के लिए, भिक्षा-परम्परा का उल्लंघन किया था । तिस पर भी यह दिखाने के लिए कि छबड़ो में बहुत ज्यादा जौ नहीं है, वह उसे चुटकी से पकड़े हुए थे । चुटकी इतना बोझ न सँभाल सकती थी । हाथ काँप रहा था । एक क्षण का विलम्ब होने से छबड़ी के हाथ से छूटकर गिर पड़ने की सम्भावना थी, इसलिए वह जल्दी से बाहर निकल जाना चाहते थे । सहसा भोला ने छबड़ी उनके हाथ से छीन ली और त्योरियाँ बदल कर बोला—सेंत का माल नहीं है, जो लुटाने चले हो ? छाती फाड़-फाड़कर काम करते हैं, तब दाना घर में आता है ।

सुजान ने खिसियाकर कहा—मैं भी तो बैठा नहीं रहता ।

भोला—भीख, भीख की तरह दी जाती है, लुटायी नहीं जाती। हम तो एक बेला खाकर दिन काटते हैं कि पति-पानी बना रहे और तुम्हें लुटाने की सूझती है ! तुम्हें क्या मालूम कि घर में क्या हो रहा है ?

सुजान ने इसका कोई जवाब न दिया। बाहर आकर भिखारी से कह दिया—बाबा, इस समय जाओ, किसी का हाथ खाली नहीं है। और पेड़ के नीचे बैठकर विचारों में मग्न हो गया। अपने ही घर में उसका यह अनादर ! अभी वह अपाहिज नहीं है, हाथ-पांव थके नहीं हैं, घर का कुछ-न-कुछ काम करता ही रहता है। उस पर यह अनादर ! उसी ने यह घर बनवाया, यह सारी विभूति उसी के श्रम का फल है, पर अब इस घर पर उसका कोई अधिकार नहीं रहा। अब वह द्वार का कुत्ता है, पड़ा रहे और घर वाले जो रूखा-सूखा दे दें, वह खाकर पेट भर लिया करे। ऐसे जीवन को धिक्कार है। सुजान ऐसे घर में नहीं रह सकता।

सन्ध्या हो गयी थी। भोला का छोटा भाई शंकर नारियल भरकर लाया। सुजान ने नारियल दीवार से टिकाकर रख दिया। धरे-धरे तम्बाकू जल गई। ज़रा देर में भोला ने द्वार पर चारपाई डाल दी। सुजान पेड़ के नीचे से न उठा।

कुछ देर और गुजरी। भोजन तैयार हुआ ! भोला बुलाने आया ! सुजान ने कहा—भूख नहीं है। बहुत मनावन करने पर भी न उठा। तब बुलाकी ने आकर कहा—खाना खाने क्यों नहीं चलते ? जी तो अच्छा है ?

सुजान को सबसे अधिक क्रोध बुलाकी ही पर था। यह भी लड़कों के साथ है ! यह बैठी देखती रही और

भोला ने मेरे हाथ से अनाज छीन लिया। इसके मुँह से इतना भी न निकला कि ले जाते हैं, ले जाने दो। लड़कों को न मालूम हो कि मैंने कितने श्रम से यह गृहस्थी जोड़ी है; पर यह तो जानती है। दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा। भादों की अँधेरी रातों में मड़ैया लगाए जुआर की रखवाली करता था, जेठ-बैसाख की दोपहरी में भी दम न लेता था और अब मेरा घर पर इतना भी अधिकार नहीं है कि भीख तक दे सकूँ। माना कि भीख इतनी नहीं दी जाती; लेकिन इनको तो चुप रहना चाहिए था! चाहे मैं घर में आग ही क्यों न लगा देता। कानून से भी तो मेरा कुछ होता है। मैं अपना हिस्सा नहीं खाता, दूसरों को खिला देता हूँ; इसमें किसी के बाप का क्या साझा! अब इस वक्त मनाने आयी है! इसे मैंने फूल की छड़ी से भी नहीं छुआ, नहीं तो गाँव में ऐसी कौन औरत है? जिसने खसम की लातें न खायी हों, कभी कड़ी निगाह से देखा तक नहीं। रुपये-पैसे, लेना-देना सब इसी के हाथ में दे रखा था। अब रुपये जमा कर लिए हैं, तो मुझी से घमंड करती है! अब इसे बेटे प्यारे हैं, मैं तो निखट्टू, लुटाऊ, घर-फूंकू, घोंघा हूँ। मेरी इसे क्या परवा? तब लड़के न थे, जब बीमार पड़ी थी और मैं गोद में उठाकर बैद के घर ले गया था, आज इसके बेटे हैं और यह उनकी माँ है। मैं तो बाहर का आदमी हूँ, मुझे घर से मतलब ही क्या! बोला—मैं अब खा-पीकर क्या करूँगा, हल जोतने से रहा, फावड़ा चलाने से रहा मुझे खिलाकर दाने को क्यों खराब करोगी? रख दो, बेटे दूसरी बार खाएँगे।

बुलाकी—तुम तो ज़रा-ज़रा-सी बात पर तिनक जाते हो। सच कहा है, बूढ़ापे में आदमी की बुद्धि मारी जाती

है। भोला ने ही तो कहा था कि इतनी भीख मत ले जाओ, या और कुछ ?

सुजान—हाँ, बेचारा इतना ही कहकर रह गया। तुम्हें तो तब मजा आता, जब वह ऊपर से दो-चार डंडे लगा देता। क्यों ? अगर यही अभिलाषा है, तो पूरी कर लो, भोला खा चुका होगा, बुला लाओ। नहीं, भोला को क्यों बुलाती हो, तुम्हीं न जमा दो दो-चार हाथ। इतनी कसर है, वह भी पूरी हो जाए।

बुलाकी—हाँ, और क्या, यही तो नारी का धरम है ! अपना भाग सराहो कि मुझ-जैसी सीधी औरत पा ली। जिस बल चाहते हो, बिठाते हो। ऐसी मुँह-जोर होती, तो तुम्हारे घर में एक दिन निबाह न होता !

सुजान—हाँ भाई, वह तो मैं ही कह रहा हूँ कि तुम देवी थीं और हो। मैं तब भी राक्षस था और अब तो दैत्य हो गया हूँ। बेटे कमाऊ हैं, उनकी-सी न कहोगी तो क्या मेरी-सी कहोगी, मुझसे अब क्या लेना-देना है ?

बुलाकी—तुम झगड़ा करने पर तुले बैठे हो, और मैं झगड़ा बचाती हूँ कि चार आदमी हँसेंगे। चलकर खाना खा लो सीधे से, नहीं तो मैं भी जाकर सो रहूँगी।

सुजान—तुम भूखी क्यों सो रहोगी ? तुम्हारे बेटों की तो कमाई है। हाँ, मैं बाहरी आदमी हूँ।

बुलाकी—बेटे तुम्हारे भी तो हैं ?

सुजान—नहीं मैं ऐसे बेटों से बाज आया। किसी और के बेटे होंगे। मेरे बेटे होते, तो क्या मेरी यह दुर्गति होती ?

बुलाकी—गालियाँ दोगे, तो मैं भी कुछ कह बैठूँगी। सुनती थी, मर्द बड़े समझदार होते हैं, पर तुम सबसे न्यारे हो। आदमी को चाहिए कि जैसा समय देखे, वैसा काम करे। अब

हमारा और तुम्हारा निबाह इसी में है कि नाम के मालिक बने रहें और वही करें, जो लड़कों को अच्छा लगे। मैं यह बात समझ गई, तुम क्यों नहीं समझ पाते ? जो कमाता है, उसी का घर में राज होता है, यही दुनिया का दस्तूर है। मैं बिना लड़कों से पूछे कोई काम नहीं करती, तुम क्यों अपने मन की करते हो ? इतने दिनों तो राज कर लिया, अब क्यों इस माया में पड़े हो ? आधी रोटी खाओ, भगवान् का भजन करो और पड़े रहो। चलो, खाना खा लो।

सुजान—तो अब मैं द्वार का कुत्ता हूँ ?

बुलाकी—बात जो थी, वह मैंने कह दी। अब अपने को जो चाहे समझो।

सुजान न उठे। बुलाकी हारकर चली गई।

सुजान के सामने अब एक नयी समस्या खड़ी हो गई थी। वह बहुत दिनों से घर का स्वामी था और अब भी ऐसा ही समझता था। परिस्थिति में कितना उलट-फेर हो गया था, इसकी उसे ख़बर न थी। लड़के सेवा-सम्मान करते हैं, यह बात भ्रम में डाले हुए थी। लड़के उसके सामने चिलम नहीं पीते, खाट पर नहीं बैठते, क्या यह सब उसके गृह-स्वामी होने का प्रमाण न था ? पर आज उसे ज्ञात हुआ कि यह केवल श्रद्धा थी, उसके स्वामित्व का प्रमाण नहीं। क्या श्रद्धा के बदले वह अपना अधिकार छोड़ सकता था ? कदापि नहीं। अब तक जिस घर में राज्य किया, उसी घर में पराधीन बनकर वह नहीं रह सकता। उसको श्रद्धा की चाह नहीं, सेवा की भूख नहीं। उसे अधिकार चाहिए। वह इस घर पर दूसरों का अधिकार नहीं देख सकता। मंदिर का पुजारी बनकर वह नहीं रह सकता।

न-जाने कितनी रात बाकी थी। सुजान ने उठकर

गँड़ासे से बैलों का चारा काटना शुरू किया। सारा गाँव सोता था, पर सुजान करबी काट रहे थे। इतना श्रम उन्होंने अपने जीवन में कभी न किया था। जब से उन्होंने काम करना छोड़ा था, बराबर चारे के लिए हाय-हाय पड़ी रहती थी। शंकर भी काटता था, भोला भी काटता था, पर चारा पूरा न पड़ता था। आज वह इन लौंड़ों को दिखा देंगे, चारा कैसे काटना चाहिए। उनके सामने कटिया का पहाड़ खड़ा हो गया और टुकड़े कितने महीन और सुडौल थे, मानो साँचे में ढाले गए हों!

मुँह-अँधेरे बुलाकी उठी, तो कटिया का ढेर देखकर दंग रह गई। बोली—क्या भोला आज रात-भर कटिया ही काटता रह गया? कितना कहा कि बेटा, जी से जहान है; पर मानता ही नहीं। रात को सोया ही नहीं।

सुजान भगत ने ताने से कहा—वह सोता ही कब है? जब देखता हूँ, काम ही करता रहता है। ऐसा कमाऊ संसार में और कौन होगा?

इतने में भोला आँखें मलता हुआ बाहर निकला। उसे भी यह ढेर देखकर आश्चर्य हुआ। माँ से बोला—क्या शंकर आज बड़ी रात को उठा था, अम्माँ?

बुलाकी—वह तो पड़ा सो रहा है। मैंने तो समझा, तुमने काटी होगी।

भोला—मैं तो सबेरे उठ ही नहीं पाता। दिन-भर चाहे जितना काम कर लूं, पर रात को मुझसे नहीं उठा जाता।

बुलाकी—तो क्या तुम्हारे दादा ने काटी है?

भोला—हाँ, मालूम तो होता है। रात-भर सोए नहीं मुझसे कल बड़ी भूल हुई। अरे! वह तो हल लेकर जा रहे हैं! जान देने पर उतारू हो गए हैं क्या?

बुलाकी—क्रोधी तो सदा के हैं। अब किसी की सुनेंगे थोड़े ही।

भोला—शंकर को जगा दो, मैं भी जल्दी से मुँह-हाथ धोकर हल ले आऊँ।

जब और किसानों के साथ भोला हल लेकर खेत में पहुँचा, तो सुजान आधा खेत जोत चुके थे। भोला ने चुपके से काम करना शुरू किया। सुजान से कुछ बोलने की हिम्मत न पड़ी।

दोपहर हुई। सभी किसानों ने हल छोड़ दिए। पर सुजान भगत अपने काम में मग्न हैं। भोला थक गया है। उसकी बार-बार इच्छा होती है कि बैलों को खोल दे, मगर डर के मारे कुछ कह नहीं सकता, उसको आश्चर्य हो रहा है कि दादा कैसे इतनी मेहनत कर रहे हैं।

आखिर डरते-डरते बोला—दादा, अब दोपहर हो गई। हल खोल दें न ?

सुजान—हाँ, खोल दो। तुम बैलों को लेकर चलो, मैं डांड़ फेंक-कर आता हूँ।

भोला—मैं संझा को डांड़ फेंक दूंगा।

सुजान—तुम क्या फेंक दोगे ? देखते नहीं हो, खेत कटोरे की तरह गहरा हो गया है। तभी तो बीच में पानी जम जाता है। इसी गोइँड़ के खेत में बीस मन का बीघा होता था। तुम लोगों ने इसका सत्यानाश कर दिया।

बैल खोल दिये गए। भोला बैलों को लेकर घर चला; पर सुजान डांड़ फेंकते रहे। आधे घंटे के बाद डाँड़ फेंक-कर वह घर आये, मगर थकान का नाम न था। नहा-खा-कर आराम करने के बदले उन्होंने बैलों को सुहलाना शुरू किया। उनकी पीठ पर हाथ फेरा, उनके पैर मले, पूँछ

सुहलायी। बैलों की पूंछें खड़ी थीं। सुजान की गोद में सिर रखे, उन्हें अकथनीय सुख मिल रहा था। बहुत दिनों के बाद आज उन्हें यह आनंद प्राप्त हुआ था उनकी आँखों में कृतज्ञता भरी हुई थी। मानो वे कह रहे थे, हम तुम्हारे साथ रात-दिन काम करने को तैयार हैं।

अन्य कृषकों की भाँति भोला अभी कमर सीधो कर रहा था कि सुजान ने फिर हल उठाया और खेत की आर चले। दोनों बैल उमंग से भरे दौड़े चले जाते थे, मानो उन्हें स्वयं खेत में पहुँचने की जल्दी थी।

भोला ने मड़ैया में लेटे-लेटे पिता को हल लिये जाते देखा! पर उठ न सका उसकी हिम्मत टूट गई। उसने कभी इतना परिश्रम न किया था। उसे बनी-बनायी गिरस्थी मिल गई थी। उसे ज्यों-त्यों चला रहा था। इन दामों वह घर का स्वामी बनने का इच्छुक न था। जवान आदमी को बीस धंधे होते हैं। हँसने-बोलने के लिए, गाने-बजाने के लिए उसे कुछ समय चाहिए। पड़ोस के गाँव में दंगल हो रहा है। जवान आदमी कैसे अपने को वहाँ जाने से रोकेगा! किसी गाँव में बरात आयी है, नाच-गाना हो रहा है, जवान आदमी क्यों उसके आनन्द से वंचित रह सकता है? वृद्धजनों के लिए ये बाधाएँ नहीं। उन्हें न नाच-गाने से मतलब, न खेल-तमाशे से गरज, केवल अपने काम से काम है।

बुलाकी ने कहा—भोला, तुम्हारे दादा हल लेकर गये।

भोला—जाने दो अम्माँ, मुझसे तो यह नहीं हो सकता।

4

सुजान भगत के इस नवीन उत्साह पर गाँव में टीकाएँ हुईं। निकल गई सारी भगती। बना हुआ था। माया में फँसा हुआ है। आदमी काहे को, भूत है!

मगर भगतजी के द्वार पर अब फिर साधु-संत आसन जमाए देखे जाते हैं। उनका आदर सम्मान होता है, अब की उसकी खेती ने सोना उगल दिया है। बखारी में अनाज रखने को जगह नहीं मिलती। जिस खेत में पांच मन मुश्किल से होता था, उसी खेत में अब की दस मन की उपज हुई है।

चैत का महीना था। खलियानों में सतयुग का राज था। जगह-जगह अनाज के ढेर लगे हुए थे। यही समय है जब कृषकों को भी थोड़ी देर के लिए अपना जीवन सफल मालूम होता है, जब गर्व से उनका हृदय उछलने लगता है। सुजान भगत टोकरों में अनाज भर-भर देते थे और दोनों लड़के टोकरे लेकर घर में अनाज रख आते थे। कितने ही भाट और भिक्षुक भगत जी को घेरे हुए थे। उनमें वह भिक्षक भी था, जो आज से आठ महीने पहले भगत के द्वार से निराश होकर लौट गया था।

सहसा भगत ने उस भिक्षुक से पूछा—क्यों बाबा, आज कहाँ-कहाँ चक्कर लगा आये?

भिक्षुक—अभी तो कहीं नहीं गया भगतजी, पहले तुम्हारे पास आया हूँ।

भगत—अच्छा, तुम्हारे सामने यह ढेर है, इसमें से जितना अनाज उठाकर ले जा सको, ले जाओ।

भिक्षुक ने क्षुब्ध नेत्रों से ढेर को देखकर कहा—जितना

अपने हाथ से उठाकर दे दोगे उतना ही लूँगा।

भगत—नहीं, तुमसे जितना उठ सके, उठा लो।

भिक्षुक के पास एक चादर थी। उसने कोई दस सेर अनाज उसमें भरा और उठाने लगा। संकोच के मारे और अधिक भरने का साहस न हुआ।

भगत उसके मन का भाव समझकर आश्वासन देते हुए बोले—बस! इतना तो एक बच्चा उठा ले जाएगा।

भिक्षुक ने भोला की ओर संदिग्ध नेत्रों से देखकर —कहा मेरे लिए इतना बहुत है।

भगत—नहीं तुम सकुचाते हो। अभी और भरो।

भिक्षुक ने एक पंसेरी अनाज और भरा और फिर भोला की ओर सशंक दृष्टि से देखने लगा।

भगत—उसकी ओर क्या देखते हो बाबाजी, मैं जो कहता हूँ, वह करो। तुमसे जितना उठाया जा सके, उठा लो।

भिक्षुक डर रहा था कि कहीं उसने अनाज भर लिया और भोला ने गठरी न उठाने दी, तो कितनी भद्द होगी। और भिक्षुकों को हँसने का अवसर मिल जाएगा। सब यही कहेंगे कि भिक्षुक कितना लोभी है। उसे और अनाज भरने की हिम्मत न पड़ी।

तब सुजान भगत ने चादर लेकर उसमें अनाज भरा और गठरी बाँधकर बोले—इसे उठा ले जाओ।

भिक्षुक—बाबा, इतना तो मुझसे उठ न सकेगा।

भगत—अरे! इतना भी न उठा सकेगा! बहुत होगा, तो मन भर। भला जोर तो लगाओ, देखूँ उठा सकते हो या नहीं।

भिक्षुक ने गठरी को आजमाया। भारी थी, जगह

से हिली भी नहीं। बोला—भगतजी यह मुझसे न उठेगी।

भगत अच्छा बताओ, किस गाँव में रहते हो ?

भिक्षुक—बड़ी दूर है भगतजी; अमोला का नाम तो तो सुना होगा ?

भगत—अच्छा, आगे-आगे चलो, मैं पहुँचा दूँगा।

यह कहकर भगत ने जोर लगाकर गठरी उठायी और सिर पर रखकर भिक्षुक के पीछे हो लिए। देखने वाले भगत का यह पौरुष देखकर चकित हो गए। उन्हें क्या मालूम था कि भगत पर उस समय कौन-सा नशा था। आठ महीने निरंतर अविरल परिश्रम का आज उन्हें फल मिला था। आज उन्होंने अपना खोया हुआ अधिकार फिर पाया था। वही तलवार, जो केले को भी नहीं काट सकती, सान पर चढ़कर लोहे को काट देती है। मानव-जीवन में लाग बड़े महत्व की वस्तु है। जिसमें लाग है, वह बूढ़ा भी हो तो जवान है। जिसमें लाग नहीं, गैरत नहीं वह जवान भी ही तो मृतक है। सुजान भगत में लाग थी और उसी ने उन्हें अमानुषीय बल प्रदान कर दिया था। चलते समय उन्होंने भोला की ओर समर्थ नेत्रों से देखा और बोले—ये भाट और भिक्षु खड़े हैं, कोई खाली हाथ न लौटने पाए।

भोला सिर झुकाए खड़ा था। उसे कुछ बोलने का हौसला न हुआ। वृद्ध पिता ने उसे परास्त कर दिया था।

मन्दिर

1

मातृ-प्रेम तुझे धन्य है। संसार में और जो कुछ है, मिथ्या है, निस्सार है। मातृ-प्रेम ही नित्य है अक्षय है, अनश्वर है। तीन दिन से सुखिया के मुँह में न अन्न का एक दाना गया था, न पानी की एक बूंद। सामने पुआल पर माता का नन्हा-सा लाल पड़ा कराह रहा था। आज तीन दिन से उसने आँखें न खोली थीं। कभी उसे गोद में उठा लेती, कभी पुआल पर सुला देती। हँसते-खेलते बालक को अचानक क्या हो गया, यह कोई नहीं बताता। ऐसी दशा में माता को भूख और प्यास कहाँ ? एक बार पानी का एक घूंट मुँह में लिया था; कर कण्ठ के नीचे न ले जा सकी। इस दुखिया की विपत्ति का वार-पार न था। साल भर के अन्दर दो बालक गंगा की गोद में सौंप चुकी थी। पतिदेव पहले ही सिधार चुके थे। अब उस अभागिनी के जीवन का आधार, अवलम्ब, जो कुछ था, यही बालक था। हाय ! क्या ईश्वर इसे भी उसकी गोद से छीन लेना चाहते हैं ?—यह कल्पना करते ही माता की आँखों से झर-झर

ACC. N .....
CLASS .....
Date.....21

आँसू बहने लगते थे ! इस बालक को वह एक क्षण-भर के लिये भी अकेला न छोड़ती थी। उसे साथ लेकर घास छीलने जाती। घास बेचने बाजार जाती, तो बालक गोद में होता। उसके लिये उसने नन्हीं-सी खुरपी और नन्हीं-सी खाँची बनवा दी थी।

जियावन माता के साथ घास छीलता और गर्व से कहता—अम्माँ, हमें भी बड़ी-सी खुरपी बनवा दो, हम बहुत-सी घास छीलेंगे, तुम द्वारे माची पर बैठी रहना, अम्माँ ! मैं घास बेच लाऊँगा।

माँ पूछती—हमारे लिये क्या-क्या लाओगे, बेटा ? जियावन लाल-लाल साड़ियों का वादा करता। अपने लिए बहुत-सा गुड़ लाना चाहता था। वे ही भोली-भोली बातें इस समय याद आ-आकर माता के हृदय को शूल के समान बेध रही थीं। जो बालक को देखता, यही कहता कि किसी की डीठ है ; पर किसकी डीठ है ? इस विधवा का भी संसार में कोई बैरी है। अगर उसका नाम मालूम हो जाता। तो सुखिया जाकर उसके चरणों पर गिर पड़ती और बालक को उसकी गोद में रख देती। क्या उसका हृदय दया से न पिघल जाता ? पर नाम कोई नहीं बताता। हाय ! किससे पूछे, क्या करे ?

R.B.A.N.M'S Ednal. Institutions,
Bangalore-42
FOUNDER'S DAY STUDY PRIZE

2

तीन पहर रात बीत चुकी थी। सुखिया का चिन्ता-व्यथित चञ्चल मन कोठे-कोठे दौड़ रहा था। किस देवी की शरण जाय, किस देवता की मनौती करे, इसी सोच में पड़े-पड़े उसे एक झपकी आ गयी। क्या देखती है कि उसका

स्वामी आकर बालक के सिरहाने खड़ा हो जाता है और बालक के सिर पर हाथ फेरकर कहता है—रो मत, सुखिया तेरा बालक अच्छा हो जायगा। कल ठाकुर जी की पूजा कर दे, वही तेरे सहायक होंगे। यह कहकर वह चला जाता है।

सुखिया की आँख खुल गयी। अवश्य ही उसके पतिदेव आये थे, इसमें सुखिया को ज़रा भी सन्देह न हुआ। उन्हें अब भी मेरी सुधि है, यह सोचकर उसका हृदय आशा से परिप्लावित हो उठा। पति के प्रति श्रद्धा और प्रेम से उसकी आंखें सज़ल हो गयीं। उसने बालक को गोद में उठा लिया और आकाश की ओर ताकती हुई बोली—भगवान्! मेरा बालक अच्छा हो जाय, मैं तुम्हारी पूजा करूँगी। अनाथ विधवा पर दया करो।

उसी समय जियावन की आँखें खुल गयीं। उसने पानी माँगा। माता ने दौड़कर कटोरे से पानी लिया और बच्चे को पिला दिया।

जियावन ने पानी पीकर कहा—अम्माँ, रात है कि दिन?

सुखिया—अभी तक तो रात है बेटा, तुम्हारा जी कैसे है?

जियावन—अच्छा है, अम्माँ। अब मैं अच्छा हो गया।

सुखिया—तुम्हारे मुँह में घी-शकर बेटा, भगवान् करे तुम जल्द अच्छे हो जाओ। कुछ खाने को जी चाहता है

जियावन—हाँ अम्माँ, थोड़ा-सा गुड़ दे दो।

सुखिया—गुड़ मत खाओ भैया, अवगुन करेगा। कहो तो खिचड़ी बना दूँ!

जियावन—नहीं मेरी अम्माँ, ज़रा-सा गुड़ दे दो तेरे

पैरों पड़ूं ।

माता इस आग्रह को टल न सकी । उसने थौड़ा-सा गुड़ निकालकर जियावन के हाथ में रख दिया और हाँड़ी का ढक्कन लगाने जा रही थी किसी ने बाहर से आवाज़ दी । हाँडी वहीं छोड़कर वह किवाड़ खोलने चली गयी । जियावन ने गुड़ की दो पिण्डियाँ निकाल लीं और जल्दी-जल्दी चट कर गया ।

3

दिन-भर जियावन की तबियत अच्छी रही । थोड़ी-सी खिचड़ी खायी, दो-एक बार धीरे-धीरे द्वार पर भी आया और हमजोलियों के साथ खेल न सकने पर भी उन्हें खेलते देखकर उसका जी बहल गया । सुखिया ने समझा, बच्चा अच्छा हो गया । दो-एक दिन में जब पैसे हाथ में आ जायेंगे, तो वह एक दिन ठाकुरजी की पूजा करने चली जायगी । जाड़े का दिन झाड़ू-बुहारू, नहाने-धोने और खाने-पीने में कट गया, मगर जब सन्ध्या समय फिर जियावन का जी भारी हो गया, तब सुखिया घबरा उठी । तुरन्त मन में शंका उत्पन्न हुई कि पूजा में विलंब करने से ही बालक फिर मुरझा गया है । अभी थोड़ा-सा दिन बाकी था । बच्चे को लिटा कर वह पूजा का सामान तैयार करने लगी । फूल तो जमींदार के बगीचे में मिल गये । तुलसीदल द्वार पर था पर ठाकुरजी के भोग के लिए कुछ मिष्ठान्न तो चाहिए ; नहीं तो गाँववालों को बाँटेगी क्या ! चढ़ाने के लिए कम-से-कम एक आना तो चाहिए ही । सारा गाँव छान आयी, कहीं पैसे उधार न मिले । तब वह हताश

हो गयी । हाय रे अदिन ! कोई चार आने पैसे भी नहीं देता । आखिर उसने अपने हाथों के चाँदी के कड़े उतारे और दौड़ी हुई बनिये की दुकान पर गयी, कड़े गिरों रखें, बतासे लिए और दौड़ी हुई आयी । पूजा का सामान तैयार हो गया, तो उसने बालक को गोद में उठाया और दूसरे हाथ में पूजा की थाली लिए मन्दिर की ओर चली ।

मन्दिर में आरती का घण्टा बज रहा था । दस-पाँच भक्तजन खड़े स्तुति कर रहे थे । इतने में सुखिया जाकर मन्दिर के सामने खड़ी हो गयी ।

पुजारी ने पूछा-क्या है रे ? क्या करने आयी है ?

सुखिया चबूतरे पर आकर बोली—ठाकुरजी की मनौती की थी, महाराज; पूजा करने आयी हूँ ।

पुजारीजी दिन भर जमींदार के आसामियों की पूजा किया करते थे । और शाम-सबेरे ठाकुरजी की । रात को मन्दिर ही में सोते थे, मन्दिर में ही आपका भोजन भी बनता था, जिससे ठाकुरद्वारे की सारी अस्तरकारी काली पड़ गयी थी । स्वभाव के बड़े दयालु थे, निष्ठावान् ऐसे कि चाहे कितनी ही ठण्ड पड़े, कितनी ही ठण्डी हवा चले, बिना स्नान किये मुंह में पानी तक नहीं डालते थे । अगर इस पर भी उनके हाथों और पैरों में मैल की मोटी तह जमी हुई थी, तो इसमें उनका कोई दोष न था ! बोले—तो क्या भीतर चली आयेगी ? हो तो चुकी पूजा । यहां आकर भरभष्ट करेगी ?

एक भक्तजन ने कहा—ठाकुरजी को पवित्र करने आयी है ?

सुखिया ने बड़ी दीनता से कहा—ठाकुरजी के चरन छूने आयी हूँ, सरकार । पूजा की सब सामग्री लायी हूँ ।

पुजारी—कैसे बे-समझी की बात करती है रे, कुछ पगली तो नहीं हो गयी है ? भला तू ठाकुरजी को कैसे छुयेगी ?

सुखिया को अब तक कभी ठाकुरद्वारे आने का अवसर न मिला था। आश्चर्य से बोली—सरकार, वह तो संसार के मालिक हैं। उनके दर्शन से तो पापी भी तर जाता है, छूने से उन्हे कैसे छूत लग जायगी ?

पुजारी—अरे, तू चमारिन है कि नहीं रे ?

सुखिया—तो क्या भगवान् ने चमारों को नहीं सिरजा है ? चमारों का भगवान् कोई और है ? इस बच्चे की मनौती है सरकार।

इस पर वही भक्त महोदय, जो अब स्तुति समाप्त कर चुके थे, डपटकर बोले—मार के भगा दो चुड़ैल को। भरभष्ट करने आयी है, फेंक दो थाली-वाली। संसार में तो आप ही आग लगी हुई है, चमार भी ठाकुरजी की पूजा करने लगेंगे, तो पिरथी रहेगी कि रसातल को चली जायगी ?

दूसरे भक्त महाशय बोले—अब बेचारे ठाकुरजी को भी चमारों के हाथ का भोजन करना पड़ेगा। अब परलय होने में कुछ कसर नहीं है।

ठण्ड पड़ रही थी, सुखिया खड़ी कांप रहीं थी और यहां धर्म के ठेकेदार लोग समय की गति पर आलोचनाएँ कर रहे थे ! बच्चा मारे ठण्ड के उसकी छाती में घुसा जाता था। किन्तु सुखिया वहाँ से हटने का नाम न लेती थी। ऐसा मालूम होता था कि उसके दोनों पाँव भूमि में गड़ गये हैं। रह-रहकर उसके हृदय में ऐसा उद्‌गार उठता था कि जाकर ठाकुरजी के चरनों पर गिर पड़े। ठाकुरजी क्या इन्हीं के हैं, हम गरीबों का उनसे कोई नाता नहीं है, ये लोग होते हैं कौन

रोकनेवाले। पर यह भय होता था कि इन लोगों ने कहीं सचमुच थाली-वाली फेंक दी, तो क्या करूँगी ? दिल में ऐंठ कर रह जाती थी। सहसा उसे एक बात सूझी। वह वहां से कुछ दूर एक वृक्ष के नीचे अँधेरे में छिपकर इन भक्त-जनों के जाने की राह देखने लगी।

4

आरती और स्तुति के पश्चात् भक्त-जन बड़ी देर तक श्रीमद् भागवत का पाठ करते रहे। उधर पुजारी ने चूल्हा जलाया और खाना पकाने लगे। चूल्हे के सामने बैठे 'हू-हू' करते जाते थे और बीच-बीच में टिप्पणियाँ भी करते जाते थे। दस बजे रात तक कथा-वार्ता होती रही और सुखिया वृक्ष के नीचे ध्यानावस्था में खड़ी रही।

सारे भक्त लोगों ने एक-एक करके घर की राह ली। पुजारीजी अकेले रह गये। अब सुखिया आकर मन्दिर के सामने खड़ी हो गयी, जहाँ पुजारीजी आसन जमाये बटलोई का क्षुधावर्धक मधुर संगीत सुनने में मग्न थे। पुजारीजी ने आहट पाकर गरदन उठायी, तो सुखिया को खड़ी देखा। चिढ़कर बोले—क्यों रे, तू अभी तक खड़ी है ?

सुखिया ने थाली जमीन पर रख दी और एक हाथ फैलाकर भिक्षा-प्रार्थना करती हुई बोली-महाराज जी, मैं अभागिन हूँ। यही बालक मेरे जीवन का अलम है, मुझ पर दया करो। तीन दिन से इसने सिर नहीं उठाया। तुम्हें बड़ा जस होगा, महाराजजी।

यह कहते-कहते सुखिया रोने लगी। पुजारीजी दयालु तो थे, पर चमारिन को ठाकुरजी के समीप जाने देने का

अश्रुत पूर्व घोर पातक वह कैसे कर सकते थे। न-जाने ठाकुरजी इसका क्या दण्ड दें।

आखिर उनके भी बाल-बच्चे थे। कहीं ठाकुरजी कुपित होकर गाँव का सर्वनाश कर दें, तो ? बोले-घर जाकर भगवान का नाम ले, तेरा बालक अच्छा हो जायेगा। मैं यह तुलसीदल देता हूँ, बच्चे को खिला दे, चरणामृत उसकी आँखों में लगा दे, भगवान चाहेंगे तो सब अच्छा ही होगा।

सुखिया—ठाकुरजी के चरणों पर गिरने न दोगे महाराज जी ? बड़ी दुखिया हूँ, उधार काढ़कर पूजा की सामग्री जुटायी है। मैंने कल सपना देखा था, महाराजजी, कि ठाकुरजी की पूजा कर, तेरा बालक अच्छा हो जायेगा तभी दौड़ी आयी हूँ। मेरे पास एक रुपया है। वह मुझसे ले लो, पर मुझे एक छन-भर ठाकुरजी के चरनों पर गिर लेने दो।

इस प्रलोभन ने पण्डितजी को एक क्षण के लिए विचलित कर दिया। किन्तु मूर्खता के कारण ईश्वर का भय उनके मन में कुछ-कुछ बाकी था। सँभलकर बोले—अरी पगली, ठाकुरजी भक्तों के मन का भाव देखते हैं कि चरन पर गिरना देखते हैं। सुना नहीं है—मन चंगा तो कठौती में गंगा। मन में भक्ति न हो, तो लाख कोई भगवान के चरनों पर गिरे, कुछ न होगा। मेरे पास एक जन्तर है। दाम तो उसका बहुत है पर तुम्हें एक ही रुपये में दे दूंगा। उसे बच्चे के गले में बाँध देना। बस, कल बच्चा खेलने लगेगा।

सुखिया—ठाकुरजी की पूजा न करने दोगे।

पुजारी—तेरे लिए इतनी ही पूजा बहुत है। जो बात कभी नही हुई, वह आज मैं कर दूं और गाँव पर कोई

आफत-विपत आ पड़े, तो क्या हो, इसे भी तो सोच। तू यह जन्तर ले जा, भगवान चाहेंगे, तो रात भर में बच्चे का कलेश कट जायगा। किसी की डीठ पड़ गयी है। है भी तो चौंचाल। मालूम होता है, छत्तरी बंस है।

सुखिया—जब से इसे ज्वर है, मेरे प्रान नहों में समाये हुये हैं।

पुजारी—बड़ा होनहार बालक है। भगवान जिला दें, तो तेरे सारे संकट हर लेगा। यहाँ तो बहुत खेलने आया करता था। इधर दो-तीन दिन से नहीं देखा था।

सुखिया—तो जन्तर को कैसे बाँधूँगी, महाराज ?

पुजारी—मैं कपड़े में बाँधकर देता हूँ। बस गले में पहना देना। अब तू इस बेला नवीन बस्तर कहाँ खोजने जायगी।

सुखिया ने दो रुपये पर कड़े गिरी रखे थे। एक पहले ही भँज चुका था, दूसरा पुजारीजी को भेंट किया और जन्तर लेकर मन को समझाती हुई घर लौट आयी।

5

सुखिया ने घर पहुँचकर बालक के गले में जन्तर बाँध दिया, पर ज्यों-ज्यों रात गुजरती थी, उसका ज्वर भी बढ़ता जाता था, यहाँ तक कि तीन बजते-बजते उसके हाथ पाव शीतल होने लगे। तब वह घबड़ा उठी और सोचने लगी—हाय। मैं ही संकोच में पड़ रही और बिना ठाकुरजी के दर्शन किये चली आयी। अगर मैं अन्दर चली जाती और भगवान के चरणों पर गिर पड़ती, तो कोई मेरा क्या कर लेता ? यही न होता कि मुझे धक्के देकर निकाल देते,

शायद मारते भी। पर मेरा मनोरथ तो पूरा हो जाता। यदि मैं ठाकुरजी के चरणों को अपने आँसुओं से भिगो देती और बच्चे को उनके चरणों में सुला देती, तो क्या उन्हें दया न आती ? वह तो दयामय भगवान हैं, दीनों की रक्षा करते हैं, क्या मुझ पर दया न करते ? यह सोचकर सुखिया का मन अधीर हो उठा। नहीं, अब विलम्ब करने का समय न था। वह अवश्य जायगी और ठाकुरजी के चरणों पर गिरकर रोयेगी। उस अबला के आशंकित हृदय को अब इसके सिवा और कोई अवलम्ब, कोई आश्रय न था। मन्दिर के द्वार बन्द होंगे, तो वह ताले तोड़ डालेगी। ठाकुरजी क्या किसी के हाथों बिक गये हैं कि कोई उन्हें बन्द कर रखे।

रात के तीन बज गये थे। सुखिया ने बालक को कम्बल से ढांपकर गोद में उठाया, एक हाथ में थाली उठायी और मन्दिर की ओर चली। घर से बाहर निकलते ही शीतल वायु के झोंको से कलेजा काँपने लगा। शीत से पांव शिथिल हुये जाते थे। उस पर चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था। रास्ता दो फरलाँग से कम न था। पगडण्डी वृक्षों के नीचे-नीचे गयी थी। कुछ दूर दाहिनी ओर एक पोखरा था, कुछ दूर बाँस की कोठियाँ। पोखरे में एक धोबी मर गया था और बाँस की कोठियों में चुड़ैलों का अडडा था। बायीं ओर हरे-भरे खेत थे। चारों ओर सन-सन हो रहा था, अन्धकार साँय-साँय कर रहा था। सहसा गीदड़ों ने कर्कश स्वर से हुआँ-हुआँ करना शुरू किया। हाय। अगर कोई उसे एक लाख रुपये देता, तो भी इस समय वह यहाँ न आती, पर बालक की ममता सारी शंकाओं को दबाये हुए थी। 'हे भगवान। अब तुम्हारा ही आसरा है।' यही

जपती वह मन्दिर की ओर चली जा रही थी।

मन्दिर के द्वार पर पहुँचकर सुखिया ने जंजीर टटोल कर देखी। ताला पड़ा हुआ था। पुजारीजी बरामदे से मिली हुई कोठरी में किवाड़ बन्द किये सो रहे थे। चारों ओर अँधेरा छाया हुआ था। सुखिया चबूतरे के नीचे से एक ईंट उठा लायी और जोर-जोर से ताले पर पटकने लगी। उसके हाथों में न जाने इतनी शक्ति कहाँ से आ गयी थी। दो-तीन चोटों में ही ताला और ईंट दोनों टूटकर चौखट पर गिर पड़े। सुखिया ने द्वार खोल दिया और अन्दर जाना ही चाहती थी पुजारी किवाड़ खोलकर हड़बड़ाये हुए बाहर निकल आये और 'चोर-चोर !' का गुल मचाते गाँव की ओर दौड़े। जाड़ों में प्रायः पहर रात रहे ही लोगों की नींद खुल जाती है। यह शोर सुनते ही कई आदमी इधर-उधर से लालटेनें लिये हुए निकल पड़े और पूछने लगे—कहाँ है, कहाँ है ? किधर गया ?

पुजारी—मन्दिर का द्वार खुला पड़ा है मैंने खटखट की आवाज़ सुनी।

सहसा सुखिया बरामदे से निकल चबूतरे पर आयी और बोली—चोर नहीं है, मैं हूँ। ठाकुरजी की पूजा करने आयी थी। अभी अन्दर गयी भी नहीं, मार हल्ला मचा दिया।

पुजारी ने कहा—अब अनर्थ हो गया। सुखिया मन्दिर में जाकर ठाकुरजी को भ्रष्ट कर आयी।

फिर क्या था, कई आदमी झल्लाये हुए लपके और सुखिया पर लातों और घूंसों की मार पड़ने लगी। सुखिया एक हाथ से बच्चे को पकड़े हुए थी और दूसरे हाथ से उसकी रक्षा कर रही थी। एकाएक एक बलिष्ठ ठाकुर ने

उसे इतनी जोर का धक्का दिया कि बालक उसके हाथ से छूटकर जमीन पर गिर पड़ा, मगर वह न रोया, न बोला, न साँस ली। सुखिया भी गिर पड़ी थी। सँभलकर बच्चे को उठाने लगी, तो उसके मुख पर नज़र पड़ी। ऐसा जान पड़ा, मानो पानी में परछाई हो। उसके मुंह से एक चीख निकल गयी। बच्चे का माथा छूकर देखा। सारी देह ठण्डी हो गयी थी। एक लम्बी साँस खींचकर वह उठ खड़ी हुई। उसकी आँखों में आँसू न आये। उसका मुख क्रोध की ज्वाला से तमतमा उठा, आँखों से अँगारे बरसने लगे। दोनों मुटिठयाँ बँध गयीं। दाँत पीसकर बोली—पापियों, मेरे बच्चे के प्राण लेकर अब दूर क्यों खड़े हो? मुझे भी क्यों नहीं उसी के साथ मार डालते। मेरे छू लेने से ठाकुरजी को छूत लग जायगी। पारस को छूकर लोहा सोना हो जाता है, पारस लोहा नहीं हो सकता। मेरे छूने से ठाकुरजी अपवित्र हो जायेंगे! मुझे बनाया तो उन्हें छूत नहीं लगी? लो अब कभी ठाकुरजी को छूने नहीं आऊँगी। ताले में बन्द रखो, पहरा बैठा दो।

हाय, तुम्हें दया भी न छू नहीं गयी। तुम इतने कठोर हो। बाल-बच्चे वाले होकर भी तुम्हें एक अभागिनी माता पर दया न आयी। तिस पर धरम के ठेकेदार बनते हो। तुम सब के सब हत्यारे हो, निपट हत्यारे हो। डरो मत, मैं थाना-पुलिस नहीं जाऊँगी, मेरा न्याय भगवान करेंगे, अब उन्हीं के दरबार में फरियाद करूँगी।

किसी ने चूँ न की कोई मिनका तक नहीं। पाषाण मूर्तियों की भांति सब-के-सब सिर झुकाये खड़े रहे।

इतनी देर में सारा गाँव जमा हो गया था। सुखिया ने एक बार फिर बालक के मुँह की ओर देखा मुँह से

निकला हाय मेरे लाल ।

फिर वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। प्राण निकल गये। बच्चे के लिए प्राण दे दिये ।

माता, तू धन्य है । तुझ तैसी निष्ठा, तुझ-जैसी श्रद्धा, तुझ-जैसा विश्वास देवताओं को भी दुर्लभ है ।

□□□

R.B A.N.M'S Ednal. Institutions,
Bangalore-42
FOUNDER'S DAY STUDY PRIZE

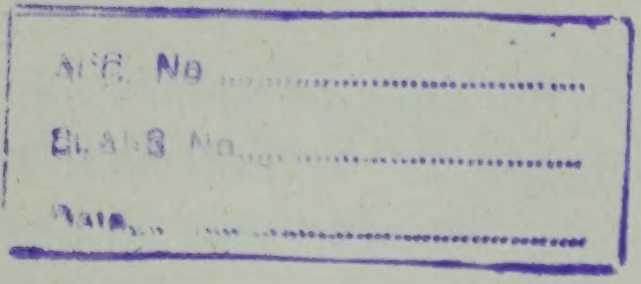

मुद्रक : शान प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032 9822

R.B.V.N.M. High School (Male)
LIBRARY